THE TIMES OF INDIA

Date:01-05-18

Electrifying India

Taking electricity to every village is a milestone, but also a first step

Editorial

Last Saturday Leisang, a village in Manipur, was electrified. This is a milestone in India's electrification programme, as all inhabited villages have been lit up. Electricity and roads make up two critical components of physical infrastructure development needed to boost standards of living. Add education and healthcare, ingredients needed to enhance the quality of human capital, and we have the four basic building blocks of a prosperous society.

Impressive as India's electrification achievement is, it's best to regard it as a first step. The goal should be to provide electric power to every household and ensure reliable supply. About 41 million households, or 16% of the total, have to be electrified for India to meet its March 2019 target of universal electrification. The Modi government announced last year additional financial help through a special programme – Saubhagya – to bring all households within the ambit of electrification. However it is states, who manage the last mile of electrification, that will make the difference. For instance, UP and Bihar account for around half the households that are yet to be electrified.

Universal electrification is a lot like universal school enrolment. It's an important milestone but quality counts for as much as universal reach. The challenge now will be uninterrupted electricity supply at affordable tariffs. This needs state governments to get a better grip on their overall finances. To illustrate, Tamil Nadu has a low transmission and distribution loss of 10.85%, but its state electricity distribution company often struggles to service its debt. This requires a more rational subsidy policy. Currently, states use industrial consumers to cross-subsidise poorer households and farmers. Often cross-subsidies are so high that consumers seek to shift to captive power plants even as Indian industry is rendered less competitive.

The journey ahead must be used to contextualise last week's milestone. It deserves celebrations, certainly, but the unfinished task is critical. Accomplishing this will be easier if states learn from success stories. In this context, Himachal Pradesh provides valuable lessons. The state not only has the lowest transmission and commercial losses, it also offsets its power cost through adequate tariffs. Governance has made a difference in Himachal. Its example shows that India can progress from universal electrification to high quality of supply in a short while.

Seeing Only Red

Red Fort is India's pride.Why complain if it gets a makeover befitting its medieval splendour?

Editorial

The brouhaha over a private sector group adopting Red Fort with the promise of spending Rs 25 crore over five years – to give the dilapidated area a facelift – is misplaced. It is clearly not a case of selling a national heritage monument to a private entity as those opposed to the scheme are alleging. At best it is a meek admission by government that public departments failed in their basic remit of preserving heritage, promoting tourism, improving sanitation and deploying better crowd management techniques. In 2016, even CAG had termed the Delhi government's Shahjahanabad redevelopment plan begun in 2008 as a complete failure.

Ever since the rise of the private sector in the post-1991 reforms era we have learnt a thing or two about private sector efficiency in growing the economy, creating jobs and executing projects better than their public sector counterparts. Of course, there are exceptions to public sector sloth but the 'Adopt a Heritage' scheme is certainly worth attempting. Considering that Red Fort is a foremost symbol of India's independence struggle, government must ensure oversight of the project, discourage excessive advertisement, and hold the company to the promises it has made.

It is billed to provide basic and advanced amenities like public conveniences, illumination, light and sound shows, surveillance and other tourist services. While companies complain that the CSR obligations mandated in Companies Act are an invisible tax and outsources government's social sector responsibilities to them, projects around monuments are also a brand building opportunity because of high visibility and large footfalls. Unlike governments in India which tend to be indifferent about civic failures corporates will, hopefully, do better even if only to stave off adverse publicity for the brand. If private investment can boost heritage conservation, create a larger pool of conservationists and boost tourist arrivals, it deserves a chance.

दैनिक भास्कर

Date: 01-05-18

न्यायपालिका को डटकर लड़ाई लड़नी होगी

न्यायाधीशों में विवाद है, लोगों का भरोसा घटा है और कार्यपालिका इस पर वार करने की ताक में है।

शेखर गुप्ता (एडिटर-इन-चीफ, 'द प्रिन्ट')

भारतीय न्यायपालिका को घटनाएं जिस खतरनाक मोड़ पर ले आई हैं क्या उसके लिए कोई रूपक है? देश के शीर्ष न्यायाधीशों को जिस संकट का सामना करना पड़ रहा है, वह कितना गंभीर है? जज आपस में बहस कर रहे हैं, न्यायपालिका में लोगों का भरोसा कमजोर पड़ा है और कार्यपालिका इस पर वार करने के लिए तैयार है। जब सरकार किसी गरीब नागरिक को अधिकारों से वंचित कर देती है तो वह अदालतों में नहीं तो कहां जाता है? यदि वह देखे कि सर्वोच्च न्यायालय को उसी सरकार से संरक्षण की जरूरत है तो उसके भरोसे का क्या होगा? पिछले ही हफ्ते सरकार चीफ जस्टिस का बचाव करती दिखी। उसी हफ्ते कानून मंत्री ने चीफ जस्टिस को पत्र लिखकर कॉलेजियम की दो लंबे समय से लंबित नियुक्तियों में से एक को मंजूरी देते हुए दूसरे को पुनर्विचार के लिए लौटा दिया। सरकार की इस दलील में दम नहीं है कि केरल के कई जज हैं या वरिष्ठता वाले कई जज हैं।

सरकार तो न्यायपालिका को सिर्फ यह याद दिला रही है कि स्पष्ट बहुमत के साथ वही अंतिम बॉस है। नेता जानते हैं कि जजों ने काफी नैतिक जगह गंवा दी है। अब वे उस पर कब्जा करने के लिए बढ़ रहे हैं। मामला सत्तारूढ़ दल तक सीमित नहीं है। न्यायपालिका की मौजूदा स्थिति ने लोकसभा में 10 फीसदी से कम सांसदों वाली पार्टी को भी महाभियोग प्रस्ताव लाने की हिम्मत दे दी। राजनीतिक लाभ तो कुछ हुआ नहीं, सुप्रीम कोर्ट और खासतौर पर देश के मुख्य न्यायाधीश को और कमजोर जरूर कर दिया। ऐसी हालत में उस सरकार के जोशीले बचाव की उन्हें बिल्कुल जरूरत नहीं थी, जिससे जवाब मांगने की उनसे अपेक्षा रहती है।

भाजपा-कांग्रेस एक-दूसरे को चाहे जितना नापसंद करती हों पर न्यायपालिका को उसकी जगह दिखाने में वे एक हैं। याद है इस बंटी हुई संसद ने भी वह कानून किस तेजी से पारित किया था, जिसमें जजों को नियुक्त करने की उच्च न्यायपालिका की शक्तियों में राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (एनजेएसी) गठित कर कटौती का प्रावधान था। 4-1 के आदेश से एनजेएसी के गठन को रद्द करने वाली पांच जजों की बेंच ने यही तर्क दिया था कि वे 'कार्यपालिका के एहसान के जाल' में फंसना नहीं चाहते। लेकिन, अब यह एनजेएसी के बिना हो रहा है।

चीफ जस्टिस पर कॉलेजियम के शेष चार जजों ने सवाल उठाए हैं। वे लोया फैसले व मेडिकल कॉलेज केस पर आंदोलनकारी वकीलों के निशाने पर हैं। कांग्रेस से महाभियोग की धमकी मिलने और भाजपा सरकार के उनके बचाव में आने के बाद वे रक्षात्मक मुद्रा में हैं। क्या उनसे अपने संस्थान के लिए लड़ने की अपेक्षा की जा सकती है, खासतौर पर तब जब वे अपने असंतुष्ट सहयोगी जजों से चर्चा के अनिच्छुक हैं? कॉलेजियम द्वारा मंजूर की गई नियुक्तियों में विलंब आम है।

एक मामले में कॉलेजियम ने हाई कोर्ट जज को जो कार्यकाल दिया था, वह भी बदल दिया और कॉलेजियम ने अनिच्छा से ही सही स्वीकार कर लिया। इससे उसकी हिम्मत बढ़ी और उसने केएम जोसेफ की नियुक्ति को पुनर्विचार के लिए

भेज दिया। यदि कॉलेजियम झुक गया या इसके भीतर विवाद जारी रखा तो सरकार अगला और अधिक दुस्साहसी कदम उठा सकती है। वह क्या होगा, अटकलें लगाई जा सकती हैं। कोई यह भी सोच सकता है जो आज असंभव लगता है : सरकार वरिष्ठता का सिद्धांत तोड़कर वरिष्ठतम जज जस्टिस रंजन गोगोई को अगले चीफ जस्टिस के रूप में मंजूरी न दे।

सरकार का यह मानना सही है कि न्यायपालिका हाल ही में जन सहानुभूति काफी खो चुकी है। अदालतों में लंबित मामले होते हुए जनहित याचिकाओं से सुर्खियां बटोरने की इसकी प्रवृत्ति अनदेखी नहीं रही है। एनजेएसी को तत्काल खारिज किए जाने से इस धारणा की पुष्टि हुई कि जज केवल अपने हितों की रक्षा में ही तेजी दिखाते हैं। यदि लोया फैसले के आलोचकों पर कार्रवाई की मांग वाली जनहित याचिका पर चीफ जस्टिस जोर देते हैं तो यह छवि और पुख्ता होगी। यही वक्त है कि जजों और विधि जगत की हस्तियों को आपस में झगड़ने की बजाय संस्थान के लिए मिलकर लड़ना चाहिए।

न्यायपालिका के मौजूदा संकट के लिए रूपक की तलाश मुझे स्वतंत्रता आंदोलन के शुरुआती दौर में ले गई। 1906-07 में अंग्रेज एक बिल लेकर आए जो उन्हें बिना उत्तराधिकारी के मरने वाले किसान (या जाट, जो पंजाब में उसे कहा जाता था) की जमीन पर कब्जे के अधिकार देता था। भगत सिंह के चाचा अजित सिंह और लाला लाजपत राय ने इसके खिलाफ आंदोलन का नेतृत्व किया। उसका गीत अब के फैसलाबाद के संपादक बांके दयाल ने लिखा था : 'पगड़ी संभाल जट्टा, पगड़ी संभाल जट्टा ओए तेरा लुट न जाए माल जट्टा।' इतिहास में इसे पगड़ी संभाल आंदोलन ही कहा गया। लाला लाजपत राय और अजित सिंह को बर्मा की मांडले जेल भेज दिया गया। मैं इसे पूरी सावधानी और बहुत विचारपूर्वक लिख रहा हूं। यह भारतीय न्यायपालिका का 'पगड़ी संभाल जट्टा' पल है।

प्रतिबद्ध न्यायपालिका की इंदिरा गाधी की खोज और 1973 के बाद उसके दमन के पश्चात यह इस संस्थान के लिए सबसे बड़ा खतरा है। न्यायपालिका ने फौलादी कॉलेजियम से अपने को हमेशा के लिए सुरक्षित मानने के करीब दो दशक बाद यह खतरा आया है। इस दौरान इसने कमजोर नियुक्तियों, तीव्र सुधार टालने, प्रभावशाली लोगों के मामलों में विलंब के प्रति बढ़ते अधैर्य की अनदेखी करने, प्रचार के प्रति जजों की कमजोरी पर अविश्वास जैसा काफी कुछ गलत किया है, जिससे यह इस हद तक कमजोर हो गई है। जजों को हमने इस सब में सावधान किया था।

यदि न्यायपालिका यह लड़ाई हार गई तो इसे अपूरणीय क्षति होगी और हम सारे नागरिकों को खमियाजा भुगतना होगा। चीफ जस्टिस को पसंद हो या न हो पर वे ऐसी स्थिति में है कि उन्हें सुप्रीम कोर्ट और उनके कॉलेजियम के लिए डटकर लड़ना होगा। जहां तक उनके सहयोगी जजों की बात है, 1973-77 के इतिहास की याद पर्याप्त होगी। इंदिरा गांधी के दमन से लाभ लेने वाले जज का नाम किसी को याद नहीं है। लेकिन, जिन जजों ने उनकी वरिष्ठता की अनदेखी करने पर विरोध में इस्तीफे दिए थे वे भारतीय न्यायपालिका के हॉल ऑफ फेम के सदस्य हैं। आज के कुछ जजों को फिर ऐसी परीक्षा से गुजरना पड़ सकता है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 01-05-18

महत्त्वपूर्ण उपलब्धि

संपादकीय

सरकार ने रविवार को कहा कि देश के सभी गांवों में बिजली पहुंचाने का लक्ष्य पूरा हो चुका है। यह लक्ष्य मई 2017 तक पूरा किया जाना था, बहरहाल यह ऐसी उपलब्धि है जिस पर गौर किया ही जाना चाहिए। कई स्तरों पर यह बहुत खेद की बात है कि देश के गांवों तक बिजली पहुंचाने में इतना अधिक वक्त लग गया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली सरकार ने उचित ही इसे प्राथमिकता में लिया और एक ऐसी व्यवस्था तैयार की जिसके तहत गांवों तक बिजली पहुंचाने के काम को ऑनलाइन ट्रैक करना संभव हुआ। सरकार ने इस दौरान काफी हद तक समयसीमा का भी ध्यान रखा। यह काम आसान नहीं था। बल्कि यह काफी चुनौतीपूर्ण था क्योंकि विद्युतीकरण के आखिरी दौर में उन गांवों तक बिजली पहुंचानी थी जो दूरदराज के इलाकों में थे और ऐसे पहाड़ी इलाकों में थे जहां लोगों और सामग्री को पहुंचाना काफी मुश्किल काम था। ऐसे में इस उपलब्धि के लिए सरकार को बधाई देनी तो बनती है। परंतु फिर भी पूर्ण विद्युतीकरण की उपलब्धि का वह तात्पर्य नहीं है जो होना चाहिए। विद्युतीकरण की परिभाषा बेहद कमजोर है। इसके लिए गांव के आसपास बिजली का मूलभूत ढांचा उपलब्ध होना ही पर्याप्त है।

मसलन पंचायत कार्यालय में बिजली की व्यवस्था होना। इसके अलावा गांव के कम से कम 10 फीसदी परिवारों तक बिजली की पहुंच हो। इसमें सब तक पहुंच जैसी कोई बात नहीं है। न ही बिजली की उपलब्धता या निरंतर उपलब्धता से इसका कोई लेनादेना है। एक गांव को तब भी बिजली वाला माना जाएगा जब उसके आसपास से बिजली की लाइन गुजरती हो, पंचायत कार्यालय माइक्रो ग्रिड से संबद्ध हो और गांव के 10 फीसदी घरों में चंद घंटों के लिए ही बिजली आती हो। जाहिर सी बात है दूरदराज स्थित हर घर को ग्रिड से जोडऩे का काम अभी बाकी है। विभिन्न अनुमानों पर यकीन करें तो देश के 20 से 25 फीसदी घरों में अभी भी बिजली नहीं है। इसमें जो क्षेत्रवार अंतर है वह भी ध्यान देने लायक है।

आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, केरल, पश्चिम बंगाल, पंजाब और तमिलनाडु जैसे कुछ राज्यों में जिन घरों में अभी बिजली पहुंचनी है उनकी तादाद नगण्य है। जबकि बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखंड और असम जैसे राज्यों में तकरीबन आधे घरों को अभी बिजली ग्रिड से जोड़ा जाना बाकी है। अभी कुछ महीने पहले तक उत्तर प्रदेश और बिहार में ही करीब 2.1 करोड़ परिवारों तक बिजली नहीं पहुंच सकी थी। ग्रामीण विद्युतीकरण के लक्ष्य की इस प्राप्ति को समय की कसौटी पर भी कसना होगा और इसकी पुष्टि करनी होगी।

दरअसल इससे पहले कुछ ऐसे अवसर आ चुके हैं जब अधिकारियों ने यह घोषणा कर दी कि किसी खास गांव तक बिजली पहुंच गई है लेकिन बाद में इस खबर के गलत निकलने पर या उस पर सवाल उठने पर शर्मिंदगी का सामना करना पड़ा। यानी दूरदराज इलाकों तक बिजली पहुंचाने की समस्या का पूरा समाधान नहीं हो सका है। किसी गांव तक बिजली पहुंचाने का यह अर्थ नहीं है कि अंतिम घर तक बिजली पहुंच गई है। इस अतिरिक्त कदम को उठाने के लिए निरंतर ध्यान देने और अधिकाधिक राजनीतिक इच्छाशक्ति की आवश्यकता है जो ग्रामीण विद्युतीकरण को लेकर प्रतिबद्ध हो। आशा की जानी चाहिए कि बिजली मंत्रालय अब ऐसी जानकारी लाएगा कि कितने परिवारों तक बिजली नहीं पहुंच सकी है। तभी वास्तविक प्रगति का समयबद्ध आकलन किया जा सकेगा।

Date: 30-04-18

जनसत्ता

कोरिया में उम्मीद

संपादकीय

उत्तर कोरिया के अपना परमाणु परीक्षण केंद्र बंद करने के एलान के बाद दक्षिण कोरिया और अमेरिका से उसके संबंधों में सुधार की उम्मीद बनी है। उत्तर कोरिया के नेता किम जोंग उन और दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति मून जेई इन के बीच बातचीत के बाद यह फैसला सामने आया। दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति मून जेई इन ने जानकारी दी कि उत्तर कोरिया अगले महीने से अपना परमाणु परीक्षण बंद कर देगा। इस बात की तस्दीक के लिए वह अमेरिकी प्रतिनिधियों और मीडिया को न्योता देगा। उत्तर कोरियाई नेता किम ने भी अपने बयान में कहा कि अमेरिका बेशक हमारे बारे में अच्छी राय नहीं रखता, मगर हम परमाणु हमला करने के पक्षधर नहीं हैं। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने इस फैसले का स्वागत किया है। अब अमेरिकी राष्ट्रपति और उत्तर कोरियाई नेता की मुलाकात की योजनाएं भी बनाई जाने लगी हैं। इस फैसले को इसलिए ऐतिहासिक कहा जा सकता है कि इससे उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया के बीच नजदीकी बढ़ेगी और परमाणु हमले को लेकर जताई जा रही आशंकाएं समाप्त हो जाएंगी।

जब से उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया अलग हुए, दोनों के रिश्ते लगातार कड़वे होते गए थे। उत्तर कोरिया को रूस और चीन का समर्थन हासिल है, तो दक्षिण कोरिया को अमेरिका का। इस तरह दोनों देश दो ध्रुवों में बंटी दुनिया की राजनीति का मोहरा बने हुए हैं। दक्षिण कोरिया कल-कारखानों और दूसरे विकास कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित कर लगातार तरक्की करता गया, पर उत्तर कोरिया भयंकर गरीबी से घिरता गया। दक्षिण कोरिया के प्रति उसमें इतनी नफरत भरती गई कि उत्तर कोरिया उसे किसी भी तरह समाप्त करने पर आमादा था। इसी नफरत के चलते उसने अपने परमाणु कार्यक्रमों पर ध्यान केंद्रित किया और साम्यवादी देशों के बिखराव के बाद पाकिस्तान से नजदीकी कायम कर खतरनाक परमाणु हथियारों का जखीरा तैयार कर लिया। अमेरिका लगातार दबाव डालता रहा कि उत्तर कोरिया अपने परमाणु हथियार बनाने का सिलसिला बंद करे। यहां तक कि पिछले दिनों राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने उसे धमकाया कि अगर वह परमाणु हथियार बनाना बंद नहीं करता, तो उसे हमले के लिए खुद को तैयार रखना चाहिए। इस पर उत्तर कोरियाई नेता ने जवाब दिया कि अगर अमेरिका ने उसकी तरफ आंख उठाने की भी कोशिश की तो वह अपने घातक परमाणु हथियारों का इस्तेमाल करेगा। किम जोंग उन के तीखे तेवर से दुनिया भर में परमाणु हमले के बुरे नतीजों को लेकर आशंका व्याप्त हो गई। ऐसे में उत्तर कोरिया का ताजा रुख राहत का संकेत है।

उत्तर कोरिया ने अपने परमाणु हथियारों को विराम देने का मन बनाया है, तो जाहिर है उसका तरक्की के दूसरे रास्तों पर भरोसा बढ़ा है। यह वक्त का तकाजा भी है। अब दुनिया के तमाम देश हथियारों के बजाय अर्थव्यवस्था को मजबूत करके ताकतवर बनने में यकीन करते हैं। उत्तर कोरिया जितने समय तक दक्षिण कोरिया और अमेरिका से लोहा लेने के लिए ताकत जुटाने का प्रयास करेगा, उतनी देर तक वहां के लोगों की मुश्किलें बनी रहेंगी। इसलिए अगर वह दक्षिण कोरिया के साथ संबंध बेहतर बनाने का प्रयास करता है, तो उसकी तरक्की के रास्ते खुलेंगे। दोनों देशों के एक होने की

उम्मीद करना जल्दबाजी होगी, मगर इससे यह जरूर होगा कि दो ध्रुवीय तनातनी में फंसे रह कर हथियारों की होड़ के बजाय दोनों कोरिया कारोबार और दूसरे विकास कार्यक्रमों की तरफ अपना ध्यान केंद्रित कर सकेंगे।

Date: 30-04-18

वुहान की राह

संपादकीय

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का चीन का दो दिन का दौरा दोनों देशों के रिश्तों के इतिहास में एक बड़ा वाकया था, खासकर इसलिए कि पिछले साल तिहत्तर दिन चले डोकलाम गतिरोध के कारण महीनों तक लगातार तनातनी का माहौल रहा था। यात्रा का मकसद इस खटास को दूर करना था। दरअसल, इसकी कवायद और पहले से शुरू हो गई थी, जिसे भारत के विदेश सचिव और विदेशमंत्री के चीन दौरे तथा दोनों तरफ के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकारों की बैठक से बल मिला था। डोकलाम गतिरोध दूर हो जाने के बाद चीन से रिश्ते सामान्य बनाने की पहल न करना कूटनीतिक जड़ता ही होती। फिर, तनातनी जारी रहने की सूरत में दक्षिण एशिया के पड़ोसी देशों में भारत को नाहक एक प्रतिद्वंद्विता का तनाव झेलना पड़ा है, क्योंकि चाहे श्रीलंका हो या बांग्लादेश या नेपाल या फिर मालदीव, चीन ने पिछले कुछ बरसों में इन देशों में अपनी पैठ तेजी से बढ़ाई है। लेकिन क्या चीन भी संबंध सुधार के लिए उतना ही उत्सुक था? राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने तो यही जताया। उन्होंने दो बार प्रोटोकॉल तोड़ कर प्रधानमंत्री मोदी की अगवानी की। बेजिंग से बाहर दूसरे शहर में आकर स्वागत किया। दोनों नेताओं के बीच बातचीत निर्धारित समय से ज्यादा चली। साथ-साथ संग्रहालय देखा, वहां भी निर्धारित वक्त से ज्यादा रहे। साथ-साथ चहलकदमी की। साथ-साथ नाव की सैर की। अवसरोचित टिप्पणियों से ही नहीं, भंगिमाओं और व्यवहार से भी सौजन्य और संबंध सुधार का संदेश दिया गया।

शिखर वार्ता अनौपचारिक थी। और जैसा कि पहले से तय था, कोई साझा बयान जारी नहीं हुआ, न कोई समझौते हुए। दरअसल, यह बस आपस में आई खटास दूर करने की कोशिश थी। मोदी ने अगले साल भारत में इसी तरह की शिखर वार्ता आयोजित करने की पेशकश की और उसके लिए शी को निमंत्रित किया। यह फिलहाल साफ नहीं है कि शी ने इस पेशकश को मंजूर किया है या नहीं। बहरहाल, मोदी के इस दौरे की तुलना 1988 में हुए राजीव गांधी के चीन दौरे से की जा रही है। भारत-चीन युद्ध के छब्बीस साल बाद बेजिंग गए राजीव गांधी की देंग श्याओ पेंग से मुलाकात काफी अहम साबित हुई थी, जो कि दोनों के बीच हुए कारोबारी समझौतों में भी दिखी। मोदी का दौरा कहीं ज्यादा अनौपचारिक रहा। ज्यादा चिंता इस बात की रही कि डोकलाम जैसे प्रकरण की पुनरावृत्ति न हो। सीमा पर शांति बनाए रखने और गलफहमी या कोई अप्रिय स्थिति पैदा होने पर उसे बातचीत से सुलझाने और वास्तविक नियंत्रण रेखा पर तैनात दोनों तरफ के सैनिकों के बीच आपसी भरोसा बढ़ाने पर सहमति बनी है।

जहां तक सीमा विवाद का सवाल है, इसे सुलझाने के लिए दोनों तरफ के विशेष प्रतिनिधियों की वार्ता प्रक्रिया और इस सिलसिले में अरसा पहले तय हुए सैद्धांतिक ढांचे पर एक बार फिर विश्वास जता कर चुप्पी साध ली गई। न अरुणाचल का जिक्र आया, न व्यापारिक असंतुलन का, न एनएसजी का, न जैश-ए-मोहम्मद के सरगना मसूद अजहर को

आतंकवादियों की अंतरराष्ट्रीय सूची में डालने का। शी की बेहद महत्त्वाकांक्षी योजना बेल्ट ऐंड रोड इनीशिएटिव पर भी चर्चा होने के कोई संकेत नहीं दिए गए, जिस योजना के तहत चीन एक आर्थिक गलियारे का निर्माण पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में कर रहा है। क्या असहमति वाले खास मुद्दे जानबूझ कर किनारे कर दिए गए, ताकि वुहान के आयोजन की चमक फीकी न पड़े?

राष्ट्रीय सहारा

Date: 30-04-18

बेहतरी की उम्मीद

संपादकीय

निश्चय ही यह राहत की बात है कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और चीनी राष्ट्रपति शी जिनपिंग के बीच चीन के वुहान शहर में आयोजित दो दिवसीय अनौपचारिक शिखर वार्ता सकारात्मक माहौल में खत्म हुई। यह दोनों देशों के नेताओं के बीच ऐसी पहली शिखर वार्ता थी जिसका न कोई एजेंडा निश्चित था और न जिसमें किसी तरह का घोषणा पत्र जारी करने की औपचारिकता थी। वार्ता के बाद भारत के विदेश सचिव विजय गोखले ने जो वक्तव्य दिए उनके अनुसार 4 मुद्दों पर सहमति बनी है। ये हैं-सीमा पर शांति, अफगानिस्तान में साथ काम करने, विशेष प्रतिनिधि नियुक्त करने और आतंकवाद पर सहयोग। पिछले साल डोकलाम में भारतीय और चीनी सैनिकों के बीच 72 दिनों तक सैन्य गतिरोध चला था। ऐसे में सीमावर्ती इलाकों में शांति बरकरार रखने के महत्त्व को आसानी से समझा जा सकता है। सीमा पर शांति के लिए सेनाओं के बीच संवाद को बढ़ाने के साथ कई मुद्दों पर सहमति के आलोक में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चीन ने तत्काल यह तय किया है कि सीमा पर किसी प्रकार की अप्रिय स्थिति कायम न हो। जब तक इसके विपरीत संकेत नहीं आते हमें इसका स्वागत करना चाहिए। इसमें सहयोग करने में पीछे हटने का कोई कारण नहीं है। हालांकि आतंकवाद पर सहयोग के संदर्भ में बहुत उम्मीद अभी जल्दबाजी होगी। इसका कारण पाकिस्तान के प्रति चीन का रवैया है। बावजूद इसके इस शिखर वार्ता के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता है। यह एक नए तरह के शिखर संवाद की शुरुआत है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने संबंधों की बेहतरी के लिए जो पांच सूत्रीय एजेंडा पेश किया उसकी तुलना प. नेहरू की पंचशील से की जा रही है। ये हैं, समान दृष्टिकोण, बेहतर संवाद, मजबूत रिश्ता, साझा विचार और साझा समाधान। शी ने कहा कि उनका देश मोदी के बताए पंचशील के इन नए सिद्धांतों से प्रेरणा लेकर भारत के साथ सहयोग और काम करने को तैयार है। इसका मतलब है सैद्धांतिक रूप में मोदी की पांच सूत्रों से सहमति। जिस तरह से चीन ने पहल करके बंधनरहित शिखर वार्ता के लिए मोदी की मेजबानी की उसे अतीत के आलोक में आशंकाओं की नजर से ही देखते रहें तो फिर आगे बढ़ने का रास्ता बंद हो जाएगा। अच्छी बात है कि भविष्य में इस तरह के बिना औपचरिकता वाला संवाद जारी रखने पर सहमति बनी है। इससे ही धीरे-धीरे संबंधों की दिशा तय होगी।

Date: 30-04-18

लालकिला पर संग्राम

संपादकीय

दिल्ली के लाल किले को डालमिया भारती समूह द्वारा पांच वर्ष के लिए 25 करोड़ रु पये में गोद लेने का तीखा राजनीतिक विरोध हो रहा है। आम लोगों को भी अचानक आई यह खबर समझ में नहीं आ रही है कि आखिर किसी निजी कंपनी के हाथों इस ऐतिहासिक इमारत को देने का क्या कारण हो सकता है? हालांकि यह सच है कि डालमिया समूह इससे कोई मुनाफा नहीं कमाएगा। इसके विपरीत वह पांच साल तक इसका रख-रखाव करेगा तथा मूलभूत सुविधाओं का विस्तार करेगा। मूलभूत सुविधाओं की विस्तृत सूची है और सबके लिए समय सीमा भी तय है। घोषित योजनानुसार यदि सारे काम हो गए तो लाल किला का पर्यटकों की दृष्टि का कायाकल्प हो जाएगा। इस समय भले हंगामा हो रहा है, लेकिन सरकार ने काफी पहले ही "अडॉप्ट अ हेरिटेज परियोजना' की घोषणा की थी, जिसमें निजी कंपनियों से देश के धरोहरों को गोद लेने की अपील की गई थी।

सरकार ने पर्यटन मंत्रालय और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग वाली समिति की मदद से मार्च में 31 स्मारक मित्रों की सूची बनाई थी। यह सब समाचार पत्रों के माध्यम से सामने आ रहा था। वास्तव में लाल किला एकमात्र ऐतिहासिक स्मारक नहीं है, जिसे सरकार विकास करने के लिए निजी कंपनियों को एक निश्चित समय के लिए गोद देने जा रही है। यह बात ठीक है कि ये कंपनियां इन धरोहरों से कुछ भी कमाएंगी नहीं। किंतु वे अपना साईन बोर्ड लगाएंगी कि इसे उन्होंने विकसित किया है। ऐसे पर्यटन स्थल पर जितनी भारी संख्या में प्रतिदिन लोग आते हैं, उसे देखते हुए कपंनियों के प्रचार के लिए ये काफी अनुकूल है। यानी कपंनियां जो धन लगा रहीं हैं, उसके पीछे मूल भाव केवल किसी ऐतिहासिक धरोहर को विकसित करने का दायित्व निर्वहन नहीं, बल्कि प्रचार भी है। वैसे दुनिया के अनेक देशों में निजी कंपनियां ऐतिहासिक इमारतों की देखरेख करती हैं। फिर भी सरकार की सोच पर प्रश्न तो खड़े होते ही हैं। क्या सरकार ने मान लिया कि इन इमारतों की समुचित रख-रखाव उसके वश की बात नहीं है? अगर नहीं माना तो फिर स्वयं ऐसा करने में हर्ज क्या है? ज्यादातर ऐतिहासिक इमारतों के अंदर जाने के टिकट लगते हैं। जहां नहीं है, वहां टिकट लगाया जा सकता है। उससे होने वाली आय से रख-रखाव एवं आधारभूत सुविधाओं को आसानी से विकसित किया जा सकता है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 30-04-18

कहां से लाएंगे हर साल 81 लाख नई नौकरियां

जयंतीलाल भंडारी, (अर्थशास्त्री)

विश्व बैंक ने दक्षिण एशिया की अर्थव्यवस्था पर केंद्रित रिपोर्ट 'रोजगार रहित विकास-2018' में कहा है कि भारत में तेजी से बढ़ती बेरोजगारी को देखते हुए हर साल 81 लाख नई नौकरियों व नए रोजगार के अवसर पैदा करने की जरूरत है। इतने अवसर जुटाने के लिए भारत को 18 फीसदी विकास दर की जरूरत होगी, जबकि साल 2017-18 में यह 6.7 फीसदी थी और मौजूदा वित्त वर्ष, यानी 2018-19 में 7.3 फीसदी रह सकती है। रिपोर्ट मानती है कि भारत नोटबंदी

और जीएसटी के नकारात्मक असर से बाहर आ चुका है और निजी निवेश व निजी उपभोग में भी सुधार हुआ है। पर जीडीपी वृद्धि दर के मुकाबले रोजगार वृद्धि की मौजूदा दर बनी रही, तो तेजी से बढ़ती श्रमशक्ति के लिए रोजगार सुनिश्तित करना मुश्किल काम होगा। ऐसे में, भारत में रोजगार दर बढ़ाने के लिए भारी निवेश के साथ ही विनिर्माण क्षेत्र को गतिशील करने, निर्यात व श्रम कौशल बढ़ाने की जरूरत होगी। विश्व बैंक की रिपोर्ट ही भारत में रोजगार की बढ़ती चुनौती को रेखांकित कर रही हो, ऐसा नहीं है। कई अन्य राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों में भी ऐसी ही चिंताएं दिखाई दे रही हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी भारत में रोजगार की स्थिति पर चिंता जताते हुए इसकी आर्थिक-सामाजिक चुनौतियों के प्रति आगाह किया है।

बेरोजगारी व उम्मीद लगाए युवाओं की बेसब्री का आलम यह है कि पिछले दिनों भारतीय रेलवे ने एक लाख दस हजार नई भर्तियों का एलान किया, तो इसके लिए ढाई करोड़ से ज्यादा आवेदन आ गए। इतनी बड़ी संख्या में आवेदन का शायद यह विश्व रिकॉर्ड होगा। रिक्तियों पर आवेदन का यह परिदृश्य न सिर्फ केंद्रीय स्तर पर है, वरन विभिन्न राज्यों में भी दिखाई दे रहा है। तेजी से कम होती नौकरियों के दंश से युवाओं को बचाने के लिए हमें दुनिया में सबसे अधिक रोजगार देने वाले देश चीन से सीखना होगा। चीन ने विनिर्माण, स्व-रोजगार, लघु-कुटीर उद्योग और कौशल विकास के बल पर रोजगार के अवसरों का ढेर लगा दिया। हमें भी इन क्षेत्रों पर ध्यान देना होगा। देश-दुनिया में भारत के कौशल युक्त युवाओं की बढ़ती मांग पर ध्यान देना होगा। विश्व बैंक की वैश्विक रोजगार से संबंधित रिपोर्ट में भी कहा गया है कि दुनिया के अधिकांश विकसित व विकासशील देशों में भारत के कौशल प्रशिक्षित युवाओं की मांग बढ़ रही है। देश में भी मेक इन इंडिया की सफलता के लिए कौशल प्रशिक्षित युवाओं की जरूरत है।

रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए देश में बुनियादी ढांचा मजबूत करने, निवेश में वृद्धि और नई मांग सृजित करने की जरूरत होगी। न सिर्फ मेक इन इंडिया की सफलता के लिए कौशल प्रशिक्षित युवाओं की कमी को पूरा करना होगा, वरन विश्व बाजार में भारत के कौशल प्रशिक्षित युवाओं की मांग को पूरा करने के लिए भी कौशल प्रशिक्षण के रणनीतिक प्रयास करने होंगे। देश के उद्योग-व्यवसाय में कौशल प्रशिक्षित युवाओं की मांग और आपूर्ति का अंतर कम करना होगा। मैन्युफैक्चरंग सेक्टर की भूमिका बढ़ाने के साथ ही उन ढांचागत सुधारों पर ध्यान देने की जरूरत है, जिनसे निर्यातोन्मुखी विनिर्माण क्षेत्र को गति मिल सके। ऐसा करने से भारत की आर्थिक व औद्योगिक विकास की नई संभावनाओं को पंख लग सकते हैं। इस समय दुनिया के कुल उत्पादन का 18.6 फीसदी उत्पादन अकेले चीन के पास है, लेकिन कुछ वर्षों से चीन में आई लगातार सुस्ती और युवा कार्यशील आबादी में कमी और बढ़ती श्रम लागत के कारण वहां औद्योगिक उत्पादन में दिक्कतें बढ़ी हैं। ऐसे में, उत्पादन गुणवत्ता के मामले में चीन से आगे चल रहे भारत के मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर में आगे बढ़ने की अच्छी संभावनाएं देखी जा रही हैं।

निस्संदेह, निर्यात में वृद्धि करके भी देश में रोजगार के अवसर बढ़ाए जा सकते हैं। पर इसके लिए निर्यातकों को प्रोत्साहन देना जरूरी है। भारतीय निर्यातक संगठनों के महासंघ (एफआईईओ) ने भी कहा है कि सरकार द्वारा निर्यातकों को दी जा रही रियायतें वैश्विक निर्यात की बढ़ती चुनौतियों के मद्देनजर कम हैं। वैश्विक संरक्षणवाद की नई चुनौतियों के बीच सरकार को निर्यात प्रोत्साहन के लिए और कारगर कदम उठाने होंगे।

The Wuhan moment

Modi-Xi meet acknowledges the need for political maturity, diplomatic skill in managing India-China relations

Editorial

There was never an expectation that the informal summit between Prime Minister Narendra Modi and the Chinese President Xi Jinping at Wuhan in Central China over the weekend would produce major breakthroughs on the multiple contentions dividing Delhi and Beijing. The summit was not about top-down negotiations between the two leaders. The intense but informal engagement in a picturesque setting spread over two days was part of an effort to enhance "strategic communication" between the two rising Asian powers. It has not come a day too soon. Over the last couple of years, it had become increasingly clear that the framework established when Prime Minister Rajiv Gandhi met Chairman Deng Xiaoping in Beijing at the end of 1988 was breaking down. Their idea that the two sides could significantly expand their bilateral relations while purposefully addressing differences had become unsustainable. Repeated military confrontations on the disputed frontier, growing trade deficit in favour of Beijing, and the deepening divergence on many regional and global issues demanded that the two sides take a deep political breath and start all over again.

That precisely is what Wuhan was about. For nearly a year, Delhi and Beijing have been considering an informal leaders-level dialogue to reduce the current unacceptable levels of mistrust, generate a better appreciation of each other's interests and avoid the escalation of disputes into costly conflicts. At Wuhan, there was no attempt to gloss over a range of widening cracks in the bilateral relationship. A close reading of the separate press statements issued by the two sides revealed the divergent perceptions on all critical issues in the relationship. Whether it was the methodology to prevent the recurrence of Doklam type of incidents, the approach to sustainable bilateral trade, the norms for regional connectivity, relations with third parties like the US and Pakistan, or appropriate ways of countering terrorism, Delhi and Beijing are not on the same page.

But Modi and Xi agreed on one important thing — to keep talking at a moment of great global disruption. The history of international relations suggests that political friction between rising powers is quite common. Such friction becomes quite difficult to manage when the rising powers are neighbours. Modi and Xi recognise this is a very sensitive moment in the evolution of bilateral relationship that has become evermore important for peace, stability and prosperity in Asia and beyond. They acknowledge the need for political maturity and diplomatic skill in putting a very difficult bilateral relationship on an even keel.

People as auditors

Social audits ensure a citizen-centric mode of accountability

Nikhil Dey and Aruna Roy are social activists and are founder members of the MKSS

The breakdown of institutions has underlined the fact that democracy — and especially public funds — need eternal public vigilance. But in India, the elites close ranks to neutralise voices of dissent and alarm, thus preventing public vigilance.

Democratic governance needs the citizen to be legally empowered to ask questions, file complaints, and be a part of the corrective process. Social audits, as they have begun to evolve in India, can potentially become a powerful democratic method by which transparency can be combined with an institutionalised form of accountability to the people.

In the mid-1990s, the Mazdoor Kisan Shakti Sangathan (MKSS) experimented with, and began to conceptualise, village-based Jan Sunwais (public hearings) on development expenditure. These helped establish the Right to Information (RTI) as a potent, usable people's issue and, in parallel, the institutionalised form of social audits.

Information is empowering

In a Jan Sunwai campaign, organised in five different development blocks of central Rajasthan, people learnt by doing. They realised that information is at the core of their empowerment. The process of verification, inquiry and auditing of records was demystified. Public readings of informally accessed development records had dramatic outcomes. As the names were read out from government labour lists, the responses were immediate and galvanised the people. Information about payments made to dead people and non-workers propelled residents to testify in the Jan Sunwai. These included serving government and armed forces personnel and names randomly copied in serial order from electoral lists. Even animals absurdly enough found their way into the lists of workers. Unfinished buildings without doors, windows or a roof were shown as audited and 'complete'. Ghost names and ghost works were exposed. Fake development works paid for and 'completed' on paper enraged local residents.

The people made four sharply focussed demands and circulated them in a pamphlet: full and open access to records of development expenditure; the presence and accountability of officials who are responsible to answer people's questions; the immediate redress of grievances, including the return of defalcated money to its intended purpose; and mandatory 'social audits' .

Amitabh Mukhopadhyaya, then an officer of the IA&AS, who visited, watched and contributed to the architectural growth of the process till he passed away a year ago, remarked that this was "audit returning to its roots": the word audit comes from the Latin word audiere, which means "to hear". The Jan Sunwai facilitated the reading of information and recorded the people's response. The effective institutionalisation of this platform could be a fundamental breakthrough in the attempt to give people and communities real monitoring powers. One of the defining slogans of the RTI movement that emerged from these Jan Sunwais and people's agitations — "hamaara paisa, hamaara hisab" (our money, our accounts) — succinctly encapsulated the concept of a social audit.

The RTI Act brought into effect the first prerequisite for social audits — giving citizens access to government records. The last 13 years of its use have demonstrated its salutary effect, but also made it obvious that information itself is not enough. Contemporary discourse on the RTI reflects frustration when ordinary people are armed with information but are unable to obtain any redress. The social audit places accountability in the centre of its frame, and transfers the power of scrutiny and validation to the people: a citizen-centric mode of accountability.

The power of social audits

The social audit is conceptually simple. Information is to be proactively shared amongst people so that they can " performance audit" a service or programme, from planning, to implementation and evaluation. This is, however, easier said than done. An independent facilitation structure needs to be set up, fleshed out, legally empowered and mandated to ensure that social audits are conducted. The relationship between the powerful and the powerless has to shift from patronage to rights, and from inequality to equality, making the right to question sacrosanct. Specific methods of sharing information, recording comments and acting on findings have been worked out. They now need to be acted upon.

The Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) was the first law to mandate social audit as a statutory requirement. However, even within the MGNREGA, social audits made painfully slow progress. They faced their most trenchant opposition in Rajasthan, where the concept was born. Elected representatives and officials reacted with intimidation, violence and pressure on the political leadership to stall and neutralise the process. The notable exception was undivided Andhra Pradesh which institutionalised social audits and drew significant positive outcomes. There have been innovative efforts in States like Sikkim, Tamil Nadu and Jharkhand. Nationally, institutionalised social audits have begun to make real progress only recently, with the interest and support of the office of the Comptroller and Auditor General (CAG), and the orders of the Supreme Court. In what was a social audit breakthrough in 2017, Meghalaya became the first State to pass and roll out a social audit law to cover all departments.

The Office of the CAG developed social audit rules for the MGNREGA in 2011, conducted a performance audit in 2015, and finally a year later formulated social audit standards in consultation with the Ministry of Rural Development — the first time in the world. If these are followed, it can be ensured that the social audit process is viable, credible and true to first principles of social accountability. The Supreme Court has recently passed a series of orders to give social audits the robust infrastructural framework they need. Citing the statutory requirements in the MGNREGA and the National Food Security Act, the court has ordered that the CAG-formulated Social Audit Standards be applied to set up truly independent state-supported State Social Audit units. It has also ordered that social audits be conducted of Building and other Construction Workers Cess, and the implementation of the Juvenile Justice Act. Social audits, if properly implemented, will help address the impunity of the system in delivery and implementation.

The current dispensation makes a cursory mention of social audits in its manifesto. But there has been no delivery on legal accountability frameworks such as the Lokpal Bill and the Whistle Blowers Protection Bill. The system of social audits needs synergetic endorsement and a push by multiple authorities to establish an institutionalised framework which cannot be undermined by any vested interests. It is now an opportune time for citizens groups to campaign to strengthen social audits, and make real progress in holding the political executive and implementing agencies to account.